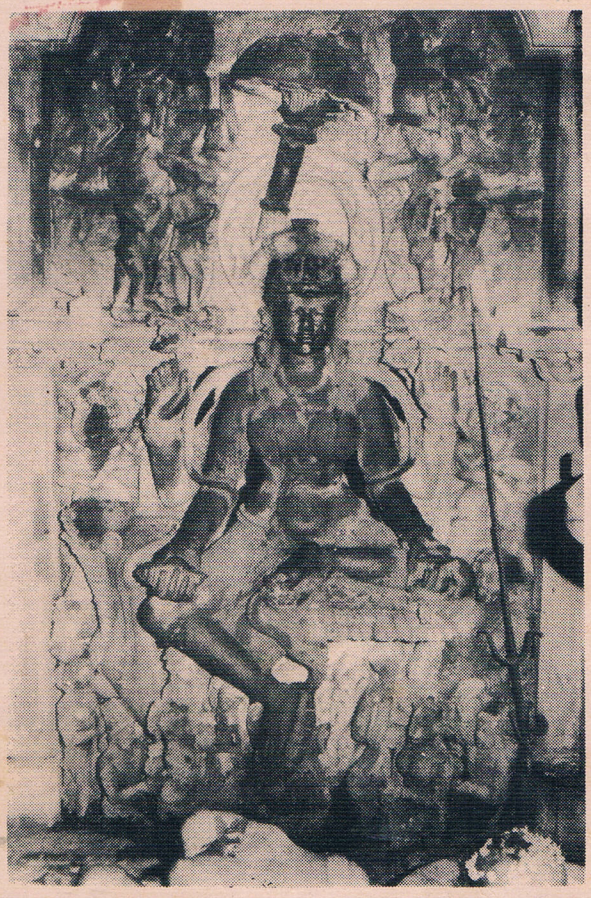

नर्मदा

नर्मदा। तेरह सौ बारह किलोमीटर लंबी यह नदी 'कहां से निकलकर कहां जाती है' के बदले अब पूछना चाहिए कि यह कहां-कहां छेंकी जायेगी ? देश की प्राचीनतम नदी अब आधुनिकतम बांधों की सबसे बड़ी कड़ी में बांधी जा रही है।

10 बड़े बांध मुख्य धारा पर बनेंगे। इनमें से तीन-सरदार सरोवर, इंदिरा सरोवर और ओंकारेश्वर बनने से पहले ही बदनाम हो चले हैं। 20 बड़े बांध नर्मदा की विभिन्न सहायक नदियों पर बन रहे हैं। इनमें से दो–बारना और तवा बन चुके हैं और बदनाम भी हो चुके हैं। फिर हैं 135 मंझले बांध और फिर उनके पीछे हैं 3000 छोटे बांध। कुल मिलाकर 1312 किलोमीटर लंबी नर्मदा कदम-कदम पर छेंकी जायेगी और लोग, गांव, कस्बे, शहर उखडेंगे, उजड़ेंगे।

नर्म-दा यानी सुख देने वाली यह नदी अगले 20 वर्षों में भारी उथल-पुथल से गुजरेगी। लेकिन नर्मदा घाटी में आज सन्नाटा है। क्या इस सन्नाटे को समझने की कोशिश हो पायेगी ?

पर्यावरण कक्ष, गांधी शांति प्रतिष्ठान 221, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित । जनवरी 86 । मुद्रक : अशोक प्रैस, गली माता वाली, नई सड़क दिल्ली-6

सामग्री सहयोग : नई दुनिया, इन्दौर, कल्पवृक्ष, नई दिल्ली तथा उकाई नव निर्माण समिति, गुजरात । चित्र : राजेश नायक

प्रकाशन सहयोग : गांधी शांति केन्द्र

नर्मदा के इस काम में आपकी मदद चाहिए

बल्कि यह जमीन काफी उपजाऊ हो जाती है, क्योंकि मिट्टी के छोटे-छोटे कण इनमें जमा हो जाते हैं। यह जमीन डूब से प्रभावित परिवारों को खेती के लिए भी मिल सकेगी। इससे उनके जीवन का निर्वाह हो सकेगा। इंसाफ के दृष्टिकोण से यह जरूरी है कि ऐसी जमीनों का कुछ हिस्सा छोटे किसानों के लिए आरक्षित रखा जाए। शासन की भी यह नीति नहीं है कि पहले जिन लोगों की जमीनें थीं, उन्हीं का ही हक डूब-कृषि की जमीनों पर कायम रहे। समाज के सभी वर्गों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए डूब-कृषि की जमीन का आवंटन करना होगा। पूर्ण में यह प्रथा थी कि प्रति वर्ष जमीन लीज पर दी जाती थी। इसमें अब परिवर्तन कर दिया गया है और कम से कम अवधि 3 वर्ष की रखी गई है।

झील बनने के फलस्वरूप मछली पालन की संभावनाएं बहुत ही बढ़े आकार में बढ़ जाती हैं। अनेक परिवारों का गुजारा मछली पालन से हो सकता है। इस धंधे में न केवल मछुआ परिवारों को लगाना चाहिए, बल्कि ऐसे परिवार जो मछली पालन का काम सीख सीख सकते हैं, उन्हें भी इस कार्यक्रम में अपना में हाथ बंटाना चाहिए।

प्रभावित परिवार अवश्य ही दूसरे गांव में जाकर बसेंगे; क्योंकि उनके लिए नया गांव बसाना संभव नहीं है। गांव में जो लोग पहले से रहते चले आ रहे हैं और जो नए परिवार आकर बसेंगे उनमें किसी प्रकार का वैमनस्य उत्पन्न नहीं होने देना है। यह इस पर निर्भर होगा कि शासन के अमले ने पुनर्वास की योजना किस प्रकार बनाई है। इस बात को सबसे अधिक एहमियत देना है कि पुराने परिवारों के ऊपर नए परिवार किसी प्रकार का बोझ न बनें।

पुराना तजुर्बा यह बताता है कि अपने पुराने गांव से हटने के बाद और नई जगह बसने के बीच की अवधि में परिवारों को बहुत मानसिक दुःख झेलना पड़ता है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है। कौन चाहता है कि सदियों से जिस जगह वह गुजर-बसर कर रहा है, उससे वह उजड़ जाए। मानसिक दुःख का सबसे बुरा असर बूढ़े लोगों पर पड़ता है, इसे ध्यान में रखना होगा। महिलाओं और बच्चों के स्वास्थ्य में भी गिरावट आने के दृष्टांत सामने आए हैं। इसके प्रति भी सतर्क रहना होगा। डाक्टरों को यह देखना है, कि उखड़ने और पुनर्वास की अवधि के बीच बीमारियों का प्रकोप न फैले। घूमते-फिरते अस्पतालों की व्यवस्था करना होगी जिससे कि लोगों के स्वास्थ्य का ध्यान बराबर रखा जाए।

पुनर्वास के प्रति अब नया रवैया कायम करने की जरूरत है। उस दिशा में सफलता तभी मिलेगी, जब सरकारी अमले की मनोवृत्ति में वांछित परिवर्तन आए। पुनर्वास को उन्हें केवल एक नौकरी के बतौर नहीं समझाना है। पुनर्वास से संबन्धित जो समस्याएं हैं, उनका पूरा आभास सरकारी अमले को होना चाहिए। उनके मन में पीड़ित परिवारों के प्रति सेवा और सहानुभूति की भावना होना चाहिए। वास्तव में केवल ऐसे लोगों को पुनर्वास की जिम्मेदारी सौंपनी चाहिए, जिनके दिल में दूसरों के लिए दर्द हो। इसलिए पुनर्वास का अमला बनाते समय शासकीय कर्मचारियों का चयन बहुत सावधानी से करना होगा। समय-समय पर उन्हें प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करनी होगी। पुनर्वास की सभी पेचीदगियों से उन्हें अवगत कराना होगा। उत्साह के एक स्तर को उनके बीच कायम रखना

होगा। बांध बनाना तो आसान है, क्योंकि उसमें सीमेंट और लोहे की जरूरत पड़ती है पर पुनर्वास में मनुष्य के साथ सलूक करना पड़ता है। यह काम कहीं कठिन है। पुनर्वास परिवारों को प्रत्येक कर्मचारी ऐसा समझे कि वह खुद उनका एक सदस्य है।

पुनर्वास से प्रभावित परिवारों के साथ उनके मवेशी भी जाएंगे। जाहिर है कि उन्हें पीछे नहीं छोड़ा जा सकता है। वैसे भी नई जगह जाकर परिवार खेती ही करेंगे, इसलिए वहां उन्हें मवेशियों की जरूरत पड़ेगी। इसलिए मवेशियों की आवश्यकता के प्रति ही ध्यान देना है, जितना कि इन्सानों के प्रति।

नई झील बनने से जंगल का बहुत बड़ा रकबा डूब में आता है। डूब में आने वाले जंगल के बराबर किसी अन्य जगह नया जंगल उगाया जाए। डूब में आने वाले जंगल की कटाई के दौरान अनेक परिवारों को रोजगार मिलेगा। जंगल कटने से जो लकड़ी मिलेगी, उसका उपयोग नए घर बनाने के लिए और प्रोजेक्ट के सिलसिले में नई बस्तियां बनाने व उनकी आवश्यकता को पूरा करने के लिए किया जा सकेगा। नए जंगल लगाने के लिए बड़े पैमाने पर रोजगार की संभावनाएं उत्पन्न होंगी। डूब कृषि के उस रकबे में जहां जंगल आज लगा है, वहां भी जंगल कायम रखना होगा, जिससे कि आस-पास के क्षेत्र की जरूरत पूरी हो सके। जाहिर है कि ऐसे वृक्ष ही डूब के क्षेत्र में छोड़े जायेंगे, जो पानी के आने पर भी जीवित रह सकें। जंगल कटने से जो इमारती लकड़ी उपलब्ध होगी, उसका उपयोग करने के लिए नए-नए उद्योग स्थापित किए जा सकेंगे।

क्षेत्रों के डूब से प्रभावित होने की खबर कई वर्ष पहले फैल जाती है। इन क्षेत्रों में जमीनों की कीमत कम हो जाती है। कोई भी व्यक्ति ऐसी जगह जमीन नहीं खरीदना चाहेगा, जो आने वाले वर्षों में डूब से प्रभावित होगी। इसलिए जमीन की खरीद-फरोख्त बहुत कम हो जाती है। इसका सबूत राजस्व विभाग का हिसाब देखने से मिल सकता है। नजदीक के क्षेत्र जो डूब से प्रभावित नहीं होते हैं, वहां तो जमीनों की कीमत ऊँची रहती हैं। भू-अर्जन अधिनियम के अन्तर्गत मुआवजा निर्धारित करते समय इस बात को ध्यान में रखना होगा कि प्रभावित क्षेत्र की जमीनों की प्रचलित दर के आधार पर ही मुआवजा मुकर्रर नहीं किया जाए।

पुनर्वास का कार्यक्रम तभी सफल होगा, जबकि प्रभावित जनता को हमेशा विश्वास में रखा जाए और उनमें ऐसी भावना पैदा की जाए कि वे शासन के सहयोगी हैं। यह भावना तभी आएगी, जबकि डूब और पुनर्वास के प्रत्येक क्रम में उनसे सलाह मशाविरा किया जाए और उन्हें हर चीज अच्छी तरह से समझाई जाए। उनके मन में ऐसा शक कभी भी उत्पन्न नहीं होने देना है कि उन्हें अंधेरे में रखकर उनसे सम्बन्धित योजनाएं बनाई जा रही हैं और निर्णय लिए जा रहे हैं। सलाह-मशाविरा करने के अनेक तरीके हैं। ग्रामीण ब्लाक और जिला स्तर पर समितियां बनाई जानी चाहिए, जिनमें समय-समय पर उत्पन्न हुई समस्याओं पर विचार किया जा सके। इन समितियों में प्रभावित परिवारों के प्रतिनिधियों को स्थान दिया जाना चाहिए, और जो राय वे दें, उन्हें ध्यानपूर्वक सुनना चाहिए। मुआवजा मुकर्रर करने की नीति के बारे में भी प्रभावित परिवारों से परामर्श किया जाना चाहिए। मुआवजे

से संबन्धित प्रकरणों का निपटारा करते समय कोशिश यह होनी चाहिए कि ग्रामीण क्षेत्र में बैठकर फैसला किया जाए। ऐसा करने से भ्रष्टचार की संभावनाएं नहीं रहेंगी।

आदिवासियों का रहन-सहन कुछ अपने अलग तरीके का होता है। एक जाति के लोग एक साथ रहना पसन्द करते हैं। उनकी अपनी परम्परागत मान्यताएं होती हैं। जंगल के लिए उनके मन में खास जगह होती है। किसी भी हालत में, दूर के किसी कार्यालय में बठकर आदिवासियों के लिए कोई योजना नहीं बनानी है, वरना उसके परिणाम बुरे हो सकते हैं।

एक बात कभी नहीं भूलना है कि जो जनता डूब से प्रभावित होती है, वह देश के लिए बहुत बड़ी कुरबानी करती है, विशेषकर उस क्षेत्र के लिए, जहाँ परियोजना के द्वारा सिंचाई का लाभ हासिल होता है। अपना घर द्वार छोड़ने से बड़ा त्याग और क्या हो सकता है। इस त्याग के रूप को न तो देश को भूलना चाहिए और न उन लोगों को, जिन्हें परियोजना से सीधे तौर से लाभ प्राप्त होता है। परियोजना के ऊपरी हिस्से उजड़ने के शिकार बनते हैं। खुशहाली नीचे के हिस्से में आती है। पन-बिजली पैदा होने पर उसका लाभ तो दूर-दूर के इलाकों को मिलता है। बिजली के द्वारा बड़े-बड़े उद्योग होते हैं। अनेक घरों में रोशनी आती है। नीचे के खेतों को न केवल नहर से पानी मिलता है, बल्कि बिजली का उपयोग कर के वहाँ के किसान अपने खेतों में कुएँ, ट्यूबवेल इत्यादि लगाकर तिगुनी-चौगुनी फसल हासिल करते हैं। जलमग्न क्षेत्र के लोग खानाबदोश की तरह हो जाते हैं। इधर-उधर जीविका के लिए भटकते रहते हैं। इसलिए न केवल देश का, बल्कि आसपास के क्षेत्रों का यह फर्ज है कि उजड़े हुए परिवारों के दुःख को दूर करने का संकल्प करें।

नई दुनिया, इंदौर से साभार।

नर्मदा घाटी परियोजना–विकास या विनाश ?

आशीष कोठारी

मध्य प्रदेश की नर्मदा घाटी में बन रहे बांधों के बारे में भारत सरकार के और राज्य सरकारों के वायदे और दावे बहुत ऊंचे हैं। लेकिन सच्चाई कुछ और ही प्रतीत होती है। कल्पवृक्ष व हिन्दू कालिज नेचर क्लब द्वारा किए गए अध्ययन से यह स्पष्ट है कि परियोजना के क्रियान्वित होने से घाटी के पर्यावरण पर जो उथल-पुथल मचेगी व घाटी के निवासियों का सामाजिक-सांस्कृतिक ढांचा चरमरा जाएगा, उससे परियोजना के लाभ न के बराबर रह जाएँगे।

गलत योजनाएं

पहली बात तो योजना के ढांचे की ही अनेक कमियां हैं। किसी भी बड़ी परियोजना में यह जरूरी है कि हर महत्वपूर्ण हिस्से की पूरी जानकारी हो। लेकिन नर्मदा परियोजना में अनेक बातों पर गौर नहीं किया गया है। यद्यपि यह मालूम है कि घाटी की मिट्टी सिंचाई की वजह से दलदलीकरण का शिकार बन सकती है, ऐसे दलदलीकरण को रोकने या दलदली जमीन को फिर उपजाऊ बनाने की जानकारी बहुत कम है। 30 बड़े व सैंकड़ों छोटे बांधों के तालाबों से भूमि पर दबाव के कारण भूकम्प के आने का डर है, लेकिन इस पर कोई अध्ययन नहीं हुआ है। सिंचाई से उत्पन्न अनेक बीमारियों की रोकथाम के विषय में जानकारी कम है। डूब में आने वाले क्षेत्र में रहते वन्य जीवों की तो अभी गणना भी नहीं हुई। पर्यावरण पर असर के जो कुछ अध्ययन जारी हैं वे सब केवल एक-एक बांध को लेकर किए जा रहे हैं न कि पूरी परियोजना को एक मानकर और वह भी तब हो रहे हैं जब बांध पर कार्य शुरू हो गया हो। ऐसे अध्ययन का कोई खास लाभ नहीं दीखता। कल्पवृक्ष का कहना है कि पूरी परियोजना की घाटी पर जो असर पड़ेगा वह एक-एक बांध को अलग-अलग देखने से नहीं दिखेगा : पर्यावरण पर अध्ययन कार्य शुरू होने से पहले ही हो जाना चाहिए ताकि बांध के लाभ व हानियों का आकलन ठीक से हो।

बांधों की उम्र :

किसी भी बांध परियोजना की लम्बे तौर पर सफलता के लिए यह आवश्यक है कि नदी के ऊपरी भाग पर जंगल बचे रहें। यदि वन कट गए तो वर्षा का पानी मिट्टी को पहाड़ियों से नीचे बहाकर नदी में ले जाएगा जिससे बांध का जलाशय जल्द ही भर सकता है। इससे बांध का जीवन कम हो जाएगा—भारत के अनेक बांधों में यह हो चुका है। कल्पवृक्ष का कहना है कि नर्मदा परियोजना में भी ऐसा होने का डर है, क्योंकि घाटी के वन बहुत तेजी से कट रहे हैं। कागज व अन्य कारखानों, खनन कार्य, खेती-विस्तार, ईंधन

के लिए लकड़ी की जरूरत व मवेशियों के चरने से इन वनों पर काफी घाव पड़ रहे हैं। गौर करने की बात यह है कि परियोजना से इन सब क्रियाओं की बढ़त होगी, खासकर कारखानों व नगरों का वनों पर दबाव। अतः नदियों से ऊपरी हिस्सों के वन का विनाश अवश्य ही होगा और अन्य परियोजनाओं पर बुरा भी प्रभाव पड़ेगा। यही वजह है कि नर्मदा परियोजना कुछ आत्मघाती-सी नजर आती है।

डूब से नुकसान :

परियोजना से वन-संपत्ति का भयानक नुकसान होगा। करीब 1·5 लाख एकड़ तो डूब में ही जाएगा और इसमें देश के सबसे बहुमूल्य सागवान के जंगलों में से भी कुछ हिस्सा है। हमारी कुल भूमि में से केवल 10-12% ही प्राकृतिक वन के नीचे हैं, ऐसी स्थिति में इतनी मात्रा में वनों का नाश अत्यन्त चिन्ताजनक है। इसके साथ-साथ नर्मदा घाटी के अनेक वन्य प्राणियों का भी ह्रास निश्चित है। कृषि भूमि व चरागाह भी बड़ी मात्रा में डूब जाएंगे। पहले ही घाटी पर कृषि व मवेशियों का अत्यधिक दबाव है : परियोजना से यह और भी बढ़ जाएगा।

लोगों का स्थानांतरण :

डूब में आने वाले क्षेत्र से आबादी को हटाना पड़ेगा। अन्दाजा है कि लगभग दस लाख लोग इससे प्रभावित होंगे—अगले 20-25 वर्षों में इन सबको कहीं और बसाना होगा। किसी भी राज्य सरकार ने आज तक इतनी बड़ी आबादी का पुनर्वास नहीं किया है। कम लोगों के पुनर्वास में भी उन्हें कोई खास सफलता नहीं मिल पाई। दादा-परदादा की जमीन से हटकर कहीं और बसना आसान नहीं होता, खासकर आदिवासियों के लिए, जो नर्मदा परियोजना से प्रभावित जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा है। यद्यपि नर्मदा में पुनर्वास के लिए कुछ अच्छे नियम बनाए गए हैं लेकिन इनको लागू करने में सरकारी अफसर कोई उत्साह नहीं दिखा रहे। वैसे भी नियमों में ही अनेक खामियां हैं, जैसे कि भूमिहीनों की अवहेलना, सांस्कृतिक जीवन के प्रति अरुचि या अलगाव लकड़ी-चारे का प्रबन्ध न होना इत्यादि। गुजरात में नर्मदा पर बन रहे सरदार सरोवर बांध से प्रभावित लोगों का पुनर्वास इतने बेहूदे तरीके से किया जा रहा है कि युवा संघर्ष वाहिनी की सहायता से उन्हें 2-3 बार सरकार के खिलाफ कानूनी कार्यवाही करनी पड़ी है।

सांस्कृतिक हानि :

परियोजना का घाटी की संस्कृति पर भारी असर पड़ेगा। इन "आधुनिक मन्दिरों" से अनेक पुराने मन्दिरों डूबेंगे—लेकिन दबाव डालने पर सरकार इनको स्थानांतरित करने पर शायद मान जाए। पर सबसे ज्यादा घाव पहुँचेगा नर्मदा परिक्रमा पर। इस पैदल यात्रा में प्रतिवर्ष हजारों लोग भाग लेते हैं—नर्मदा पर 10 बड़े जलाशयों के आने से यह काम असम्भव हो जाएगा। आदिवासियों के सांस्कृतिक ढांचे को भी यह परियोजना नष्ट कर देगी। इस रूप में संस्कृति पर चोट पहुँचने से लोगों पर क्या बुरा मानसिक प्रभाव पड़ेगा यह तो समय ही बतायेगा।

और लाभ

एक तरफ तो इतनी हानि और दूसरी तरफ लाभ भी कुछ प्रश्न चिन्ह लगा रहे हैं। ऐसी बड़ी सिंचाई परियोजनाओं में पहले-पहले तो प्रभावशाली परिणाम दिखते हैं, लेकिन अक्सर कुछ वर्ष बाद उनका जादू कुछ उतरने लगता है। योजना आयोग ने खुद ही कहा है कि सिंचाई परियोजनाओं ने खेतों का औसतन उत्पादन 4-5 टन प्रति हैक्टेयर के लक्ष्य के मुकाबले केवल 1·7 टन प्रति हैक्टेयर तक किया है। इसके अनेक कारण हैं जिसमें से एक यह भी कि कुछ वर्षों में ही सिंचाई की भूमि दलदलीकरण का शिकार बन जाती है। नर्मदा घाटी की काली मिट्टी में ऐसा होने का खास डर है—घाटी में पहले बन चुके दो बांधों (होशंगाबाद जिले में तवा व रायसेन जिले में बारना) के कमांड क्षेत्र में बहुत बड़े पैमाने पर यह हो ही चुका है। बंगलौर की इंडियन इंस्टीट्यूट आफ साइंस द्वारा हाल ही में किये गये एक अध्ययन ने बताया है कि भूमिगत जल के उचित प्रयोग व अन्य खर्चीले कार्यक्रमों के लागू न करने पर नर्मदा सागर बांध से, जो नर्मदा परियोजना का सबसे बड़ा बांध है, एक लाख हेक्टेयर जमीन दलदली बन सकती है।

परियोजना के लाभों में दूसरा सवाल यह भी है कि लाभ किसको पहुँचते हैं। अभी तक अनुभव यही रहा है कि सिंचाई का लाभ अक्सर बड़े भूमिपतियों को ही मिलता है और यह तो निश्चित है कि बिजली उत्पादन का लाभ केवल कारखानों व नगर के अमीर लोगों को मिलता है। छोटे किसान या भूमिहीन तो हाथ मसलते रह जाते हैं। नर्मदा परियोजना के रूप में यही कहानी दोहराने की पूरी आशंका है।

इन बातों से लगता है कि इस परियोजना में लाभ की तुलना में हानि कहीं अधिक होगी। लेकिन इस बात को छिपाया जा रहा है, शायद इस कारण कि योजना आयोग की अनुमति लेने के लिए यह दिखाना पड़ता है कि हर एक रुपये की लागत पर 1 50 रुपये का लाभ होगा। इस संदर्भ में एक और तथ्य चिंताजनक है—परियोजना के खर्चे में तेजी से बढ़त। परियोजना जब शुरू हुई तब कुल खर्च 4·5 हजार करोड़ का बताया गया था; आज इसे 9 हजार करोड़ तक बढ़ा दिया गया है और एक मुख्य अभियंता का कहना है कि यह अन्त तक 25 हजार करोड़ से भी अधिक हो सकता है।

"कल्पवृक्ष" ने अपने अध्ययन पर आधारित एक लम्बी रपट तैयार की है जो निम्न लिखित पते पर मंगाई जा सकती है। इसका दाम 5 रुपये हैं। अन्य संगठनों के साथ नर्मदा पर कल्पवृक्ष का कार्य जारी है—इस समय खास कर नर्मदा सागर व सरदार सरोवर पर ध्यान दिया जा रहा है। लेकिन इस गम्भीर मुद्दे को उठाने के लिए कई और लोगों व संगठनों की सहायता जरूरी है। यदि आप इसमें कुछ मदद कर सकें तो अवश्य सम्पर्क करें।

कल्पवृक्ष, द्वारा आशीष कोठारी, 1, कोर्ट रोड़, दिल्ली-110054

"क्या 6000 करोड़ रुपयों की नर्मदा योजना मिट्टी में मिल जायेगी ?"

महेन्द्र देसाई

लगता है, वह जमाना ही गुजर चुका, जब दक्षिणी गुजरात अपनी हरियाली के लए देश भर में प्रसिद्ध था। हरे भरे खेतों और फलों के बगीचों का ऐसा नाश हो चुका है कि अब उस पुरानी हरियाली को कभी न दोहराया जा सकेगा।

गुजरात में "मिनी नर्मदा" जैसे दो विराट बांध तैयार किए गए हैं—ताप्ती नदी पर उकाई बाँध और महानदी पर कडाणा बाँध। इनमें से उकाई बाँध का ढोल बहुत पीटा गया था। जनता सुन सुनकर जैसे दीवानी हो गयी थी कि उकाई बाँध ज्यों ही पूरा हुआ, त्यों ही आसमान से सोना ही बरसने लगेगा और धरती पर भी सोना ही उगेगा। उकाई बांध 1972 में बनकर तैयार हो गया। तब से आज तक इससे सोना तो दूर, कोयला भी नहीं उगला है। इसने केवल अग्नि वर्षा की है और राजनीतिज्ञों ने जनता से लगातार आशा रखी है कि वह मुस्कराती रहेगी।

आघात की वास्तविकता आज पर्वत जैसी विराट हो गयी है और पर्वत कभी पत्तियों की ओट में छिपाया नहीं जा सकता। उकाई बांध 150 करोड़ रुपयों में तैयार हुआ है—आज के हिसाब से 900 करोड़ रुपयों में। इतने विराट खर्च के बाद जो नतीजा सामने आया है, वह इतना करुण-दारुण कल्पनातीत है कि यदि जनता को उकाई के सारे आंकड़ों से अवगत करा दिया जाये, तो फिर से 6000 करोड़ रुपयों की नर्मदा योजना तैयार कर डालने का लाइसेंस कैसे मिले ? उकाई नामक मरीज की एक्स-रे-प्लेट निकालने पर जो भीतर दुर्दशा प्रकट होती है वह संक्षेप में इस प्रकार है :

इससे इन्कार नहीं कि पानी के खेतों तक पहुंचा इतना विराट बांध बना ही इसलिए है कि पानी खेतों तक पहुंचे। पानी पहुँचा तो ऐसा पहुंचा कि सब पानी में ही चला गया। सूरह, वलसाड़ और भरुच जिले पानी में डूबकर जैसे बिलबिलाने लगे। इन जिलों की नहरें ऐसी संकरी और कच्ची साबित हुईं कि पानी आते ही नहरों को तोड़ता फोड़ता निकल गया आज इस क्षेत्र में इसी पानी के प्रताप से ढाई लाख एकड़ जमीन, यदि आंचलिक शब्दों में कहें, तो "बोरण", 'खरण' या "खारपाट" बन गई हैं। याने जमीन का रूप ऐसा बदला है कि उस में अब कभी भी जुआर 'बाजरा' तुअर दाल एवं अन्य दालों या अनाज की पैदावार नहीं हो सकती। मनुष्य खाद या बिजली उत्पादित कर सकता है, किन्तु सोने जैसी जमीन एक बार बर्बाद हो जाने के बाद फिर से सोने जैसी नहीं बना सकता। यदि मान लें कि सम्पूर्ण क्षेत्र की जमीन का "कायाकल्प" किया जा सकता है और अवश्य किया जायेगा, तो इसके लिए कम से कम दस वर्षों की लम्बी योजना बनानी होगी, जिसमें अंदाजन 500

करोड़ रुपये फूंक जायेंगे।

गत 5 वर्षों से इस क्षेत्र की फसलें चौपट हैं। यदि फसल का प्रति एकड़ मूल्य रुपये 6000 गिने, तो आज तक 750 करोड़ का नुकसान हो चुका है। जमीन तो मुद्दल से ही खलास हो गयी है। इस हानि को आंकड़ों से नहीं नापा जा सकता।

पानी पी-पी कर जमीन इतनी मुलायम पड़ चुकी है कि खटिया के चार पाये भी उस पर जमाये नहीं जा सकते। नंगी जमीन पर खटिया रखकर बैठते ही पाये धंसना शुरू कर देते हैं। ऊपर से जब बारिश होती है, तब गांव-गांव में जैसे द्वीप तैयार हो जाते हैं। जमीन जरा सूखे तभी तो बुआई हो।

पानी से घिरे इन गांवों में मलेरिया, फाइलेरिया, कॉलरा, पीलिया, पोलियो आदि रोगों की गिरफ्त में सैकड़ों देहाती आ जाते है। उनमें से कितने मरते है, कितने पंगु होते हैं आंकड़े किसके पास हैं ? क्या इस प्राण हानि का मूल्य रुपयों में आंका जा सकता है ? जहां मकानों की नीवें धंस जाती हों वहां पक्के रास्तों का निर्माण कैसे हो ? ऐसे रास्ते कभी अगर बनते भी हैं, तो अगले ही महीने बैठ जाते हैं।

उकाई बांध बनाने के लिए 75000 एकड़ का एक श्रेष्ठ जंगल काट डालना पड़ा था। यह जंगल 1962 में ही जमींदोज किया जा चुका था। उस वक्त उस जंगल से एक करोड़ रुपयों की सालाना आय होती थी। रुपये के अवमूल्यन की आज जो दशा है, उस हिसाब से गिनें, तो गुजरात सरकार को आज तक सीधी हानि 225 करोड़ रुपयों की हो चुकी है। भविष्य में, एक एक वर्ष बीतने के साथ यह हानि जो बढ़ती जायेगी, वह जुदा है। जंगल तो जमींदोज कर डाला, किसी और क्षेत्र में उतना ही बड़ा नया जंगल उगाने की चिंता नहीं की गई। नतीजा यह कि वर्षा दिनों दिन घटती जा रही है, गर्मी बढ़ रही है, अन्न उत्पादन दिनों दिन नीचे जा रहा है। इस हानि को कौन नापेगा ?

975 करोड़ रुपयों की सीधी हानि तो हमने गिन डाली। यदि थके न हों, तो आगे चल ऐलान के अनुसार उकाई बांध से प्रति वर्ष 300 मैगावाट बिजली उत्पादित होने वाली थी। इतनी बिजली, कसम खाने के लिए भी, एक वर्ष भी पैदा नहीं हुई है। हो भी कैसे सकती है। स्पष्टीकरण अनेक दिए जाते हैं। मसलन, सरोवर में पानी इतना आ नहीं रहा, जितना कि सोचा गया था। कभी अचानक पानी आ जाता है कि बांध छलकने के भय से पानी पहले ही छोड़ देना पड़ता है। कभी बरसात ही ठीक से नहीं होती। आप जायेंगे इन दावों की जांच करने ? नहीं जा सकेंगे। चाहे जैसा स्पष्टीकरण दिया जाये, उसे स्वीकार किये बिना गुजारा नहीं।

असलियत यह है कि ताप्ती नदी की एक विशेषता ध्यान में रखे बिना ही बाँध बना डाला गया। विशेषता यह है कि ताप्ती के प्रवाह में मिट्टी का कटाव बहुत अधिक आता है। सदियों से ताप्ती की यही परम्परा रही है। बांध का सरोवर तो बन गया, किन्तु उसकी तली में जो मिट्टी का कटाव जमा हो रहा है, उसे कौन दूर करे। और कैसे दूर करे सरोवर की तली हर साल ऊपर उठ रही है। हर साल .83 मीटर याने पौने तीन फीट की दर से सरोवर की तली ताप्ती द्वारा घसीट कर लायी गयी मिट्टी जमा हो रही है।

आज तक सरोवर की गहराई 33 फीट कम हो चुकी होने का अंदाजा है। ऊपर से महा-सागर जैसा दीखता सरोवर आज उतना गहरा नहीं है, जितना उद्घाटन के समय था, इस सच्चाई को क्या आप सरोवर के किनारे खड़े रहकर भांप सकते है ? बिजली कम पैदा इस लिए हो रही है। हर साल 300 मैगावाट नहीं केवल 180 मैगावाट। याने, चुल्लू भर पानी के लिए बोरी भर खर्चा। कहा गया था कि प्रति घंटा बारह लाख यूनिट बिजली पैदा होगी, जो नहीं हो रही है।

जैसा कि स्पष्ट दीख रहा है, गिनती के वर्षों में यह बांध पट जायेगा। सरोवर की जगह पटी हुई मिट्टी का सपाट मैदान दिखाई देगा। बंबई, बड़ौदा, सूरत, अहमदाबाद, राज-कोट आदि शहरों में गंदी झोंपड़पट्टियां जिस वीभत्स तेजी से बढ़ रही है, उसे लेकर दुख और चिंता से मुण्डी हिलाने वालों की आज कमी नहीं है, किन्तु समस्या का मूल कहां है, कौन समझ पाया है अथवा कौन समझना चाहता है ? विकराल झोंपड़पट्टियां रातों रात कैसे तैयार हो जाती हैं ? जरा हिसाब लगायें·····

उकाई बांध के सरोवर में 170 गांव डूब गए। उन्हें हमेशा के लिए बर्बाद होने से बचाना सम्भव नहीं था। जो 75000 एकड़ का जंगल काट डाला गया, उस पर जिसकी आजीविका आधारित थी, वे भिखारियों जैसी हालत में आ गए। ढाई लाख एकड़ जमीन खेती के लिए नाकारा हो जाने से 500 गांव और भी ऐसे थे, जिनके वाशिन्दे बर्बाद हो गए। लगभग दो लाख किसानों की दशा भिखारियों जैसी बतायी जाती है। सरकारी विज्ञापन कहता है कि चार लाख हैक्टेयर जमीन तक पानी पहुँचाया गया, मगर जो जमीन जरूरत से ज्यादा पानी फैलने से बर्बाद हुई है, उसका आंकड़ा क्या है ? यदि कडाणा बांध के भी आंकड़े शामिल किये जायें तो गुजरात में आठ लाख एकड़ जमीन चौपट हो चुकी है। याने कम से कम आठ लाख व्यक्ति तबाह हुए हैं। मातर, पेटलाद, खम्भात,, आणंद आदि क्षेत्रों में, घर-घर की यही कहानी है। ये बर्बाद लोग झोपड़पट्टियों में न जायेंगे। तो कहाँ जायेंगे ? नई नई झोपड़पट्टियों इन्हीं लाचार मनुष्यों के हाथों तैयार होती है। इन झोपड़पट्टियों के लिए बिजली, पानी, गटर आदि की व्यवस्थाएँ नए सिरे से करने के पीछे खर्च आता है उसका आँकड़ा अकेले गुजरात में, कम-से कम दो हजार करोड़ रुपयों को छू रहा है।

गलत आयोजन, अदूरदर्शिता, हड़बड़ी, जिद और हर दिशा-हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार के अलावा आम आदमी को कीड़ा मकोड़ा समझने की आदत—इन्हीं कारणों से उकाई बाँध जैसी विडम्बनाएं सामने आती हैं। उकाई तो केवल एक बाँध की कथा है ऐसे न जाने कितने बाँध हैं इस देश में। उकाई से सम्बधिन्त चौंका देने वाले आँकड़े सूरत की समाज-सेवी संस्था "सेण्टर फार सोशल स्टडीज" के प्रयासों से सम्भव हो सके हैं। डेढ़ सौ करोड़ रुपयों के खर्च से जो उकाई बाँध बना, उसकी यह खाना खराबी है। अब जो 6000 करोड़ रुपयों के खर्च से नर्मदा योजना आगे बढ़ रही है, उसका हश्र क्या होगा ? कल्पना करने को जी नहीं चाहता।

नर्मदा के बड़े बांधों की ऊंचाई की समीक्षा आवश्यक

आर. एल. गुप्ता

श्री आर. एल. गुप्ता मध्य प्रदेश शासन के सिंचाई सचिव रह चुके हैं। वे देश के लब्ध प्रतिष्ठ सिंचाई इंजीनियर हैं तथा प्रदेश के सिंचाई विभाग में अपने सुदीर्घ कार्यकाल में नर्मदा घाटी विकास से भी जुड़े रहे। वे आंकड़ों एवं ज्ञात तथ्यों के आधार पर यह प्रतिपादित करते हैं कि सरदार सरोवर और नर्मदा सागर बांधों की ऊंचाई घटाई जाना जरूरी है और ऐसा किए जाने से हानि कोई खास नहीं होगी तथा लाभ ज्यादा होंगे।

नर्मदा घाटी विकास के अंतर्गत मध्य प्रदेश व गुजरात में 31 बड़े, तीन सौ मध्यम व हजारों छोटे बांध प्रस्तावित हैं। इनमें से कुछ बन चुके हैं; कुछ बन रहे हैं। ये दुर्भाग्य-वश आज एक चिंता का विषय बन गये हैं। दो बांध मध्य प्रदेश में नर्मदा सागर व गुजरात में सरदार सरोवर तो इतने विशाल बनाये जा रहे हैं कि एक ओर तो वे नर्मदा जैसी बड़ी नदी का लगभग संपूर्ण जल अपने में समेट लेंगे व दूसरी ओर उनसे होने वाले दुष्प्रभावों का फैलाव भी इतना अधिक होगा कि जिस पर चिंता होना स्वाभाविक है। इन दो बांधों से व उनके बीच ओंकारेश्वर व महेश्वर के समीप प्रस्तावित दो और बांधों से होने वाले जल विद्युत व सिंचाई के लाभ इनके दुष्प्रभावों की तुलना में काफी कम होंगे।

नर्मदा सागर जलाशय जब पूरा भरेगा तब उसका पूर्ण जल स्तर समुद्र सतह से 262·13 मीटर (860 फुट) की ऊंचाई पर रहेगा। उसमें 12·21 अरब घन मीटर पानी होगा व डूब में आने वाला क्षेत्र 91,348 हैक्टेयर में फैला होगा। पूर्ण जल स्तर 138·60 मीटर (455 फुट) के साथ सरदार सरोवर बांध भी अधिक पीछे नहीं रहेगा। ये दोनों बांध मिलकर तो भारत के अन्य सभी बड़े बांधों को जल भंडारण क्षमता, डूब में आने वाले क्षेत्र व प्रभावित होने वाली जनसंख्या के मामले में काफी पीछे छोड़ ही देंगे। अलग-अलग भी वे सभी से आगे निकल जाएंगे। (इस लेख के साथ दी हुई तालिका से यह स्पष्ट है)।

तालिका में तुलना हेतु शांत घाटी (साइलेंट वेली) व लालपुर बांध के भी आंकड़े दिये गये हैं, जिनके निर्माण कार्य पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव और जनजातियों को होने वाली हानियों के कारण बंद करना पड़े।

अखबारों में इस पर विशेष चिंता व्यक्त की गई है कि भारत की विशालतम मानव निर्मित झील नर्मदा सागर के निर्माण का कार्य जब प्रारंभ हो चुका है तब भी इसकी डूब

में आने वाले क्षेत्रों से लोगों को हटाने व उनके पुनर्वास की कोई व्यापक नीति तय नहीं की गई है। म. प्र. राज्य के पर्यावरण नियोजन व समन्वय संगठन (इपको) की रपट में निहित कुछ और कमियां भी चिंता का कारण बन रही हैं। जैसे; उनके द्वारा दिया गया प्रभावित जनसंख्या का आंकड़ा 80,500 वास्तविकता से परे है। वह काफी कम है। बांध के निर्माण से नष्ट होने वाले वनों व वन क्षेत्रों की हानि की कीमत भी सही नहीं आंकी गई है। अन्य प्राणियों के विस्थापन, धार्मिक व पुरातात्विक महत्त्व के स्मारकों को अन्यत्र ले जाने, सूक्ष्म जलवायु परिवर्तन से पैदा होने वाली स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से निपटने, भूक्षरण तथा गाद जमने आदि की लागत के अनुमान भी वास्तविक रूप से कम लगाये गये हैं। भविष्य में वे अवश्य ही बढ़ेंगे।

मैंने जून 1984 में अपने एक लेख में सुझाव दिया था कि नर्मदा सागर बांध की ऊंचाई यदि 6·1 मीटर कम कर दी जाती है तो परियोजना अधिक व्यावहारिक हो जायेगी। उसकी लागत में भी बहुत कमी आ जायेगी। यह यूं भी आवश्यक हो गया है, क्योंकि आज से 10 वर्ष पूर्व लगाये गये अनुमानों के बराबर पानी नर्मदा में आज नहीं बह रहा है। उपयोग में आने लायक जल जो पहले 34·54 अरब घन मीटर अनुमानित किया था वह वास्तव में अब घटकर केवल 28·37 अरब घन मीटर रह गया।

उक्त प्रस्तावित विकल्प से लागत में कमी के साथ-साथ डूब में आने वाले क्षेत्र में भी काफी कमी आयेगी। करीब 16 हजार हैक्टेयर कृषि भूमि तथा अनुमानित 14,000 हैक्टेयर वन भूमि डूब में आने से बचेगी। मुआवजे व प्रभावित जनसंख्या के पुनर्वास के रूप में भी काफी धनराशि की बचत होगी। करीब 90 गांवों के 40,000 से 50,000 लोगों को विस्थापन से बचा सकेंगे। यह अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि होगी। इटारसी-बंबई रेल मार्ग के 57 किलोमीटर परिवर्तित मार्ग में से काफी कुछ भाग का मार्ग नहीं बदलना पड़ेगा और इन सब अच्छाइयों के बदले पनबिजली उत्पादन में कुछ ही कमी आयेगी। सिंचाई में कोई कटौती नहीं होगी।

नर्मदा सागर परियोजना के अन्य पहलू को 'नई दुनिया' में रवीन्द्र शुक्ला ने अप्रैल 1985 में उजागर किया है। इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस बंगलौर के हवाले से उन्होंने नर्मदा सागर तथा ओंकारेश्वर परियोजना क्षेत्र में सिंचाई के अनुमानों पर प्रश्न-चिह्न लगाया है। इसी रपट में कहा गया है कि उक्त दोनों क्षेत्रों में से लगभग एक लाख हैक्टेयर भूमि में जलाधिक्य की आशंका रहेगी। इस कारण वहां उतनी फसल भी नहीं हो सकेगी जितनी अभी असिंचित अवस्था में हो रही है। बशर्ते कि सतही व भूमिगत जल का संयुक्त उपयोग (जिनका कि परियोजना के प्रस्तावों में उनके अनुसार उल्लेख नहीं है) नहीं किया जाता और जल स्तर को नीचा करने के लिये लगभग 40,000 कुएं जिनमें पानी उठाने के लिये मोटर लगी हो, नहीं खोदे जाते। इसी प्रकार आशीष कोठारी ने सितंबर 1985 में इंडियन एक्स-प्रेस में दिल्ली की संस्था 'कल्पवृक्ष' द्वारा किये गये अध्ययन के आधार पर लिखा है कि नर्मदा सागर परियोजना (न.सा.प.) के कारण म.प्र. का विशाल आर्द्र पतझड़ी वनों का क्षेत्र नष्ट हो जायेगा, जबकि भारत का वनाच्छादित क्षेत्र मात्र 10 प्रतिशत है।

विभिन्न परियोजनाएं : तुलनात्मक आंकड़े

परियोजना (राज्य)	कुल भंडारण क्षमता	डूब में आने वाला कुल क्षेत्र	प्रभावित जनसंख्या	लाभ	
				सिंचाई	स्थापित जल विद्युत क्षमता
	अरब घ.मी.	हैक्टेयर		हैक्टेयर	मेगावाट
भांखड़ा (पंजाब)	9·62	16,600	36,000	—	540
हीराकुड (उड़ीसा)	8·10	72,700	72,000	253,730	270
नागार्जुन सागर (आंध्र)	11·55	28,500	19,000	8 2,000	1100 +440
कोयना (महाराष्ट्र)	2·80	11,535	20,000	—	540
रिहंद (उप्र.)	10·60	46,900	52,000	—	300
नर्मदा सागर (म.प्र.)	12 21	91,348	80,500	130,000	1000
सरदार सरोवर (गुजरात)	9·50	37,030	51,000	2180,000	750 +450
कुल 6 व 7	21·71	128,378	131,500	2310,000	2250
शांत घाटी (केरल)	0·32	उपलब्ध नहीं है		—	240
लालपुर (गुजरात)	0·32	4,300	11,346	32,000	—

गत वर्ष म० प्र० विज्ञान व टेक्नालॉजी परिषद् द्वारा आयोजित एक संगोष्ठी में एक वरिष्ठ जल साधन विशेषज्ञ ने बतलाया कि नर्मदा सागर द्वारा दलदल की समस्या केवल उसके जलाशय के निकट ही नहीं रहेगी, जैसी कि प्राय: सभी जलाशयों में होती है । बल्कि नर्मदा घाटी की बनावट व नर्मदा सागर जलाशय की ऊँचाई देखते हुए जिसमें कि नदी का जल स्तर 85.34 मीटर ऊपर उठ जाएगा, दलदल का फैलाव काफी अधिक क्षेत्र में हो सकता है । यह संभावना भी सामने आएगी कि वह फैलाव तवा, कोलार, सुक्ता तथा छोटा तवा, बड़ी योजनाओं व दूसरी मध्यम लघु व लघुतम सिंचाई परियोजनाओं के सिंचित क्षेत्र तक भी पहुँच जाए और नर्मदा सागर जलाशय के पीछे बहुत बड़े भाग को दलदल में परिवर्तित न कर दे । उनकी यह धारणा उस समय यद्यपि नहीं मानी गई थी परन्तु, अब जबकि इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्स, बंगलौर के हाल की ताजी रपट से यह बात सामने आई कि इस परियोजना के सिंचित क्षेत्र का एक बड़ा भाग दलदल में परिवर्तित होने की संभावना सामने आएगी । तवा, बारना, चंबल व उसके निकट की हर्षी परियोजना के गंभीर अनुभवों के बाद क्या हमारा यह कर्तव्य नहीं बन जाता कि कम से कम आज तो हम बतलाई

गई संभावना को गंभीरतापूर्वक लें और उस पर समुचित छानबीन करवाएं ? यदि इस प्रकार की छानबीन आई० आई० सी० एस० अथवा किसी और संस्था से पहले नहीं करा ली गई है ?

छानबीन में इस प्रश्न का उत्तर भी प्राप्त करना होगा कि यदि जलाशयों के पीछे के क्षेत्रों में जलस्तर ऊंचा होता है तो उसे नीचा करने के लिए क्या करना होगा ? कहीं बाँधों को तोड़ना तो नहीं पड़ेगा ? जैसे कि संयुक्त राज्य अमेरिका में लिटल टेनेसी नदी पर बने 1 अरब 40 करोड़ रुपये लागत के बाँध को एक छोटी स्नेल डार्टर मछली को लुप्त होने से बचाने के लिए वहाँ के उच्चतम न्यायालय को उस बाँध को तोड़ने के आदेश हाल ही (वर्ष 1978) में देने पड़े।

इन परिस्थितियों में जबकि कई समस्याओं के हल खोजने बाकी हैं तथा कई प्रश्न अनुत्तरित हैं, यह सामयिक और एक बहुत ही अच्छा लक्षण है कि हमारे व्यावहारिक व गतिशील प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने पर्यावरण व भारत की सांस्कृतिक विरासत पर बड़े बाँधों से होने वाले विपरीत प्रभावों को देखते हुए अपनी ओर से नर्मदा सागर परियोजना तथा इन्द्रावती नदी (बस्तर) की बोध घाट पनबिजली योजना पर फिर से विचार के आदेश दिए हैं। आशा है कि इस पुनर्विचार में पर्यावरण तथा संस्कृति को होने वाले नुकसान का वास्तविक व स्वतंत्र मूल्यांकन सही किया जाएगा। और वह एक पर्यावरणिक प्रभावआ कलन बनकर ही नहीं रह जाएगा जिसमें कि कई मर्यादाएँ रहती हैं। लेकिन नर्मदा सागर परियोजना की समीक्षा सार्थक तभी होगी जब उसके दायरे में सरदार सरोवर को भी शरीक किया जाए, क्योंकि निचली नर्मदा घाटी योजना के सबसे ऊपरले सिरे पर नर्मदा सागर है तो अंतिम छोर पर सरदार सरोवर। वे एक दूसरे पर काफी निर्भर हैं। जहाँ सरदार सरोवर के डूब में नर्मदा सागर परियोजना के कमान क्षेत्र का काफी हिस्सा आता है, वहां नर्मदा सागर से पानी छोड़े जाने पर सरदार सरोवर द्वारा सिंचाई व पनबिजली का उत्पादन प्रभावित होगा। फिर सरदार सरोवर के डूब से प्रभावित होने वाले लगभग 51,000 लोगों में से 90 प्रतिशत म.प्र. में बसते हैं। इनमें से आधे आदिवासी या हरिजन हैं। इन लोगों को मुआवजा, पुनर्वास, भूखंड आदि उपलब्ध करने की जिम्मेदारी गुजरात शासन की होगी फिर भी ऐसा व्यवस्थित ढंग से व विस्थापितों की मंशा अनुसार ही उनकी नैतिक जिम्मेदारी म० प्र० पर ही आएगी। एक आकलन के अनुसार दोनों परियोजनाओं से विस्थापित होने वालों की संख्या दो लाख से भी अधिक होगी। जबकि इपको द्वारा नर्मदा सागर परियोजना से प्रभावित विस्थापितों की संख्या 80500 बताई गई है तथा सरदार सरोवर से विस्थापितों की संख्या सिर्फ 51 हजार (कुल 1,31,00) बताई गई है। परंतु इसे यदि स०स०प० की तुलना में देखा जाय तो जहां प्रति हैक्टेयर डुबान में 2 व्यक्ति प्रभावित होते हैं तो यह लगभग 180000 के लगभग आएगी न कि 80,500। और यदि न०सा० प० से संबंधित पुराने प्रकाशित 90,000 के आँकड़े को देखा जाय तो बाद की आबादी की बढ़ोत्तरी को देखते हुए यह संख्या 1,40,000 के लगभग पहुँचेगी ! और वह उस संख्या के बराबर होगी, जोकि संयुक्त राज्य अमेरिका में स्थापित 'नेचरल रिसोंसेज डिफेंस काउंसिल'

पर्यावरण संस्था द्वारा आँकी गई है। इसके अनुसार नर्मदा सिंचाई परियोजना (जिसमें संभवत : न०सा०प० वस०स०प० दोनों शामिल हैं) से प्रभावित लोगों की संख्या 200000 से अधिक होगी।

अब प्रश्न है कि अपने हितों का बलिदान कितना किया जाय अथवा बांधों के दुष्प्रभावों को किस सीमा तक बरदाश्त किया जा सकता है ? इस बारे में कई मत हो सकते हैं। परंतु इस बारे में दो मत कदापि नहीं हो सकते हैं कि मात्र कुछ अतिरिक्त मेगावाट बिजली और थोड़ी सी सिंचाई की खातिर बांधों को बड़ा बनाकर उनके बुरे प्रभावों को बढ़ाया जाए जबकि इन दुष्प्रभावों को बढ़ाए बिना अन्य साधनों (ताप-बिजली, अणु शक्ति, लघु व लघुतम जल विद्युत) से प्राप्त की जा सकती है। सिंचाई के लिए छोटे व कम सिंचाई के जलाशयों से भी पानी उद्‌वहन योजना द्वारा काम में लाया जा सकता है। जैसा कि उदाहरण के रूप में संयुक्त राज्य अमेरिका के ग्रॉंड कूली परियोजना में किया गया है। यहाँ जलाशय से जल लगभग 89 मीटर ऊपर उठाकर ले जाया जाता है और फिर थोड़े बहुत नहीं बल्कि 4 लाख हैक्टेयर से अधिक भूमि में सिंचाई की जाती है।

वन क्षेत्रों का बलिदान कितना ?

नर्मदा सागर व सरदार सरोवर जलाशयों की ऊँचाई कम रखी जाए यह आवश्यक है क्योंकि इनसे देश का वन क्षेत्र जो कि देश के क्षेत्रफल के एक तिहाई के स्थान पर वर्ष 1972-75 में वह 16.89 प्रतिशत था और वर्ष 1980-82 तक घटकर 14.16 प्रतिशत रह गया था और भी कम हो जाएगा। चाहकर भी प्रभावित क्षेत्रों की भरपाई नहीं हो पाएगी। अकेले नर्मदा सागर से 44,000 हैक्टेयर से भी अधिक वन डूब में आएगा। एक ओर तो उपलब्ध कृषि योग्य खाली भूमि, कृषि आबादी, सड़क व अन्य विकास कार्यों के दबाव के कारण कम होती जा रही है वहीं दूसरी ओर वांछित वन क्षेत्र व उपलब्ध वन क्षेत्र की खाई पाटने के स्थान पर फैलती जा रही है। स्थिति यह है कि जबकि 10 करोड़ हैक्टेयर के आस-पास के क्षेत्र में वन फैला होना चाहिए था इसके विपरीत वर्ष 1972-75 में वह 5·50 करोड़ हैक्टेयर में ही था। और वर्ष 1980-82 तक वह सिमट कर 4.64 करोड़ हैक्टेयर भूमि में ही रह गया था और इस तरह आज से 3-4 वर्षों पहले यह खाई बढ़ते-बढ़ते 5.36 करोड़ हैक्टेयर भूमि तक फैल गई थी और उपयुक्त उपलब्ध भूमि घटते घटते इस खाई के छटवें भाग के समकक्ष भी नहीं थी।

मध्यप्रदेश वनों के मामले में देश की रीढ़ है। देश के कुल वन क्षेत्र में से लगभग 20 प्रतिशत अकेले मध्यप्रदेश का है। विकास की गति में पिछड़े हुए इस प्रदेश की ये दोनों महा-सरोवर कमर ही तोड़ देंगे। पिछले एक दशक से कम समय में इस प्रदेश की 18 लाख हैक्टेयर भूमि वनरहित हो गई है। इसके प्रतिकूल परिणाम पहले ही अनुभव किए जा रहे हैं। आगे भी इस प्रदेश को क्षेत्रीय असंतुलन दूर करने के लिए व अग्रणी प्रदेशों के समकक्ष आने के लिए और भी काफी कुछ वनों का बलिदान करना पड़ेगा जो कि अनिवार्य होगा एवं ऐसी स्थिति में क्या हमारा प्रयास यह नहीं होना चाहिए कि इन दो महा सरोवरों

से कम से कम वन भूमि डूबना अनिवार्य हो उतनी प्रदेश व देश के हितों को देखते हुए डूब में आने दी जाए ?

बांधों की वैकल्पिक ऊँचाई के बारे में विचार करते समय हमें इस बात पर भी गौर करना होगा कि पहले बने बांधों के मामले में नदियों का प्रवाह आगे चल कर आशा से काफी कम पाया गया है। चंबल पर बना गाँधी सागर दो दशक पूर्व पूरा हो गया था। तब उसकी जल भंडारण क्षमता 8.45 अरब घन मीटर थी परंतु यह लक्ष्य पूर्ण नहीं हो सका। कारण स्पष्ट है नदी में प्रवाहित जल की मात्रा आशा से काफी कम रही है। इस जलाशय में ऊपर के 5.49 मीटर गत दो दशकों में औसतन पानी से नहीं रहे। यह बात भी सामने आई कि इस जलाशय की ऊँचाई यदि 5.50 मीटर अथवा 6 मीटर कम रखी जाती तो इस बड़े जलाशय हेतु जो 120 गाँवों के 50 हजार लोगों को बेदखल किया था और 228 की 67,000 हैक्टेयर भूमि को अधिग्रहण किया था उन सब में से काफी कुछ को बचाया जा सकता था। गाँधी सागर का उदाहरण अकेला नहीं है। इसलिए क्या यह उचित नहीं होगा कि नदी जल की मात्रा का अनुमान लगाते समय हम बहुत आशावादी न होकर बांधों की ऊँचाई भी तद्नुसार नीची रखें जिसमें कि नर्मदा घाटी को गाँधी सागर जैसी स्थिति से बचाया जाकर अनावश्यक व टाले जा सकने वाले दुष्प्रभावों को न्यूनतम किया जाए ? एक बार बन जाने पर बाँधों का आकार कम नहीं किया जा सकता जबकि इसके विपरीत अनुमान से अधिक पानी यदि वास्तव में प्राप्त होता है (जिसकी संभावना प्रायः नगण्य ही है) तो उस समय हमारे पास यह विकल्प रहता ही है कि कुछ और जलाशय बनाकर उस अतिरिक्त पानी का लाभ ले लें।

मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात तथा राजस्थान के बीच नर्मदा-जल के बंटवारे को लेकर जो विवाद थे, उन्हें निपटाने के लिये केंद्र सरकार ने 16 वर्ष पूर्व एक न्यायाधिकरण की स्थापना की थी। उसने वर्ष 1979 में अपना फैसला दे दिया था और प्रत्येक राज्य को प्राप्त होने वाली जल-राशि व प्रमुख परियोजनाओं से संबंधित आंकड़े आदि तय कर दिये थे। अतः इसको ध्यान में रखते हुए यदि यह पूछा जा सकता है कि नर्मदा घाटी विकास के रूप में परिवर्तन कैसे हो सकता है ? इसके उत्तर में पूछा जा सकता है कि पर्यावरण व सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण, जलाधिक्य, वन विनाश, लाखों लोगों का विस्थापन आदि पर ध्यान देते हुए व संबंधित राज्यों व केंद्र की सहमति से देश के व्यापक हित में देश के बड़े भाग को, विनाशकारी प्रतिकूल प्रभावों से बचाने के संदर्भ में भी यह परिवर्तन न करना क्या राष्ट्र के हित में होगा विशेषकर तब जबकि इन विनाशकारी प्रतिकूल प्रभावों की ओर जो कि आज सामने आ रहे हैं, नर्मदा न्यायाधिकरण का ध्यान किसी समय भी आकर्षित नहीं किया गया था ? न्यायाधिकरण ने अपने फैसले में यह गुंजाइश रखी है कि संबंधित राज्य आपसी सहमति से उनके कुछ निर्णयों में संशोधन कर सकते हैं। यदि बड़े बांधों के प्रतिकूल प्रभावों पर भी उनका ध्यान आकर्षित किया जाता तो इसकी अत्यंत संभावना रहती कि बांधों की ऊंचाई आदि के बारे में भी सर्वसम्मति से पुनर्विचार की व्यवस्था को भी वे अपने फैसले में रखते। अब जबकि इस पीढ़ी द्वारा यह नहीं किया गया है, तो इस

पीढ़ी की मूल भावना अथवा अज्ञान के सुधार की कोई व्यवस्था न की जाकर, आगे की पीढ़ियों को, बड़े बांधों के, प्रतिकूल प्रभावों से बचाने के लिये कोई रास्ता ढूंढ़ना क्या इस पीढ़ी का कर्त्तव्य नहीं बन जाता है ?

वैसे भी किसी न्यायाधिकरण के फैसले में लोकहित ही सर्वोपरि होता है और नर्मदा घाटी परियोजना के संबंध में यदि यह कटु सत्य सामने आता है कि इस घाटी के लोगों को उनके घरों से बेदखल करना, उनकी संस्कृति से खिलवाड़ करना, हजारों हैक्टेयर वनों से हाथ धोना आदि लोकहित में नहीं है तो फिर यह हमारा कर्त्तव्य ही नहीं बल्कि धर्म भी नहीं बन जाता है कि नर्मदा न्यायाधिकरण के फैसले को तूल न देते हुए इस परियोजना पर बिना किसी पूर्वाग्रह के पुनर्विचार करें और; जैसा कि प्रधानमंत्री ने नर्मदा सागर परियोजना के बारे में चाहा है इस संपूर्ण घाटी के विकास के संबंध में वैसा ही पुनर्विचार किया जाकर और यदि आवश्यक हो तो वांछित छानबीन के पश्चात् यह सुनिश्चित करें कि इस घाटी का विकास अभिशाप न होकर एक वरदान बने। ऐसा करने में अवश्य कुछ समय लग सकता है और कुछ समय के लिये विकास की गति में शिथिलता आ सकती है परंतु इससे यदि हम यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि नर्मदा घाटी के विकास से इस घाटी का अस्तित्व ही प्रश्न चिह्न नहीं बन जाएगा, कालचक्र हजारों वर्ष पीछे नहीं चला जायेगा तो उसकी तुलना में आज का यह छोटा-सा त्याग नगण्य ही पाया जायेगा। निश्चित ही आने वाली पीढ़ियों का इतना दायित्व तो हम पर है ही।

नई दुनिया इंदौर से साभार।